अत्याचारों पर निर्बंधन

drishtiias.com/hindi/printpdf/checks-against-atrocities

चर्चा में क्यों ?

सुप्रीम कोर्ट द्वारा 'सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य' मामले में दिये गए हालिया फैसले ने एक नई बहस को जन्म दे दिया है जिससे अस्पृश्यता और अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों की रोकथाम हेतु बनाए गए कानूनों और नीतियों पर प्रभाव पड़ना तय है।

वर्तमान परिदृश्य

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के दुरुपयोग संबंधी तथ्य के संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण आँकड़ों पर नज़र डालने की आवश्यकता है।
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आँकड़ों के अनुसार 2016 में अनुसूचित जातियों से जुड़े 5,347 झूठे केस दर्ज हुए, जबकि अनुसूचित जनजातियों के संदर्भ में इनकी संख्या 912 थी।
- एनसीआरबी के कुछ अन्य आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले 10 सालों में अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचारों में 51 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि अनुसूचित जातियों के मामले में यह 13 प्रतिशत है।
- 'नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी' और 'एक्शन एड इंडिया' द्वारा किये गए अध्ययनों में यह बताया गया है कि भारत में अभी भी अस्पृश्यता सहित कई अन्य तरह की धार्मिक-सामाजिक कुरीतियाँ बड़े स्तर पर विद्यमान हैं। अत: अत्याचार निवारण अधिनियम को और अधिक मज़बूत बनाने की आवश्यकता है।
- स्पृश्यता और अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के खिलाफ अपराधों के मामलों में हमारा विधान सामान्य आपराधिक न्याय प्रणाली से पूर्णत: भिन्न है। अस्पृश्यता उन्मूलन को हमारे संविधान में अनुच्छेद 17 में शामिल किया गया है।
- हालाँकि, मूल अधिकारों में शामिल होने के बावजूद अपर्याप्त प्रवर्तन तंत्र के कारण अस्पृश्यता पर प्रभावी नियंत्रण नहीं पाया जा सका है।
- वर्ष 2016 में 1989 के अत्याचार निवारण अधिनियम को मज़बूत बनाने हेतु कई संशोधन किये गए जिनमें और अधिक कृत्यों को अत्याचारों में शामिल करना; अत्याचारों के संबंध में दंड में बढ़ोतरी करना; लोक सेवकों जैसे पुलिस अफसरों पर क़ानून के प्रवर्तन की ज़िम्मेदारी में वृद्धि करना; ट्रायल और जाँच की समयसीमा में कमी लाना; गिरफ्तारी तंत्र को और सुदृढ़ बनाना; अत्याचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले मामलों हेतु स्पेशल न्यायालयों का गठन करना जैसे प्रावधान शामिल हैं।

हाल में न्यायालय द्वारा जारी किये गए नए दिशा-निर्देश

I. ऐसे मामलों में किसी भी निर्दोष को कानूनी प्रताड़ना से बचाने के लिये कोई भी शिकायत मिलने पर तत्काल एफआईआर दर्ज नहीं की जाएगी। सबसे पहले शिकायत की जाँच डीएसपी स्तर के पुलिस अफसर द्वारा की जाएगी।

II. न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है कि यह जाँच पूर्ण रूप से समयबद्ध होनी चाहिये। जाँच किसी भी सूरत में 7 दिन से अधिक समय तक न चले। इन नियमों का पालन न करने की स्थिति में पुलिस पर अनुशासनात्मक एवं न्यायालय की अवमानना करने के संदर्भ में कार्यवाही की जाएगी।

III. अभियुक्त की तत्काल गिरफ्तारी नहीं की जाएगी। सरकारी कर्मचारियों को नियुक्त करने वाली अथॉरिटी की लिखित मंज़ूरी के बाद ही गिरफ्तारी हो सकती है और अन्य लोगों को ज़िले के एसएसपी की लिखित मंज़ूरी के बाद ही गिरफ्तार किया जा सकेगा।

IV. इतना ही नहीं, गिरफ्तारी के बाद अभियुक्त की पेशी के समय मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त कारणों पर विचार करने के बाद यह तय किया जाएगा कि क्या अभियुक्त को और अधिक समय के लिये हिरासत रखा जाना चाहिये अथवा नहीं।

V. इस मामले में सरकारी कर्मचारी अग्रिम जमानत के लिये भी आवेदन कर सकते हैं। आप को बता दें कि अधिनियम की धारा 18 के तहत अभियुक्त को अग्रिम ज़मानत दिये जाने पर भी रोक है।

आगे की राह

लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार दिये गए हैं और कानून के समक्ष भी सभी को समान माना गया है। ऐसे में किसी भी नागरिक के अधिकारों का हनन अनुचित है फिर चाहे वह सवर्ण हो या दलित। न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय भी इसी तर्क की पुष्टि करता है। हिंसक प्रदर्शन जैसी घटनाओं से स्थिति और खराब ही होती है। लोगों को चाहिये कि वे संवैधानिक तरीकों से और शांतिपूर्ण ढंग से अपना पक्ष रखें न कि उत्पात मचाकर लोकव्यवस्था को खराब करें। वहीं, दूसरी ओर शासन तंत्र की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह पिछड़े समुदायों और दलितों के संरक्षण हेतु बनाए गए कानूनों का ईमानदारी पूर्वक और भेदभाव रहित दृष्टिकोण अपनाकर अनुपालन सुनिश्चित करे जिससे इन वर्गों के भीतर उत्पन्न असुरक्षा और उत्पीड़न का डर समाप्त हो सके।